खेल गीतों के सहारे खुलती पठन की दुनिया

शारदा कुमारी

इंसान की एक ख़ास उपलब्धि अपनी बात को लिपि में बाँधकर बताना और फिर उस लिपि को पढ़कर बात को जान पाना है। लिखा हुआ एक रचित रहस्यभरा संसार है और उसे पढ़कर जान पाने का हुनर एक ऐसी अनूठी चाबी है जो इस रहस्य का ताला खोलती है और पूरा संसार खुल जाता है।

वंचित समुदाय के बच्चे, जिनके जीवन में लिखित सामग्री और पढ़े जाने का व्यवहार दोनों ही लगभग शून्य हैं, उन्हें, उनके बीच गाए जाने वाले एक खेल गीत को आधार बनाकर लेखिका ने पढ़ने वाली चाबी थमाने की जीवन्त कोशिश की है। यह आलेख उसी कोशिश का सिलसिलेवार ब्योरा पेश करता है। सं.

इस दुनिया के किसी भी भूखण्ड पर पहुँच जाइए, हर जगह सैकड़ों तरह की विविधताएँ होते हुए भी सामान्य रूप से एक बात तो समान ही पाएँगे, और वह है बच्चों का एक साथ मिलकर खेलना।

बच्चों के ये सामूहिक खेल हमारी साझी सामूहिकता के सजीव उदाहरण हैं और इन खेलों के दौरान सामूहिक रूप से गाए जाने वाले खेल गीत अपने-आप में अनूठे हैं।

देश के कोने-कोने में गाए जाने वाले खेल गीतों के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं।

- हरा समन्दर गोपी चन्दर
  बोल मेरी मछली कितना पानी?
  इतना पानी
- पोशम्पा भई पोशम्पा
  डाकुओं ने क्या किया
  ताला तोड़ा घड़ी चुराई
  अब तो जेल में जाना पड़ेगा
  जेल की रोटी खानी पड़ेगी
  ये आए धप
- कोकिला छिपाकी जिमे रात आई है
  कोड़ा जमाल खाई, पीछे देखी मार खाई
- राजा राजा हाँ मेरी परजा
- रिंगा रिंगा रोज़ेज़
  पॉकेट फ़ुल ऑफ़ पोज़ेज़
  वी ऑल फ़ॉल डाउन
- छुक छुक छलनी, और कने जा जंगली
- डोकरी माँ डोकरी माँ का करे है
- टिप्पी टिप्पी टॉप
  व्हॉट कलर डू यू वान्ट
  आई वान्ट, आई वान्ट आई वान्ट
  पर्पल... आदि आदि।

न जाने कितनी तुकबन्दियाँ इन सामूहिक खेलों के साथ जुड़ी हैं। रोमांचित कर देने वाली

बात तो यह है कि हिमालय के दुर्गम क्षेत्र में बसने वाले बच्चें हों या मैदानी शहरी इलाक़ों के बच्चे, ये खेल गीत अपनी क्षेत्रीयता की अनूठी पुट लिए हर जगह मिल जाएँगे।

इन खेल गीतों का आविर्भाव कब हुआ, कहाँ से हुआ और कैसे हुआ, ऐसी जानकारी न तो समाजशास्त्री जुटा पाए हैं और न ही भाषा वैज्ञानिक। पर इतना ज़रूर है कि सभी ज्ञानी चाहे वे भाषा के क्षेत्र से हों या बाल विकास, बाल मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, या किसी भी अन्य क्षेत्र से क्यों न हों, सभी ने इन खेल गीतों को बहुत तरजीह दी है।

इन खेल गीतों को सिर्फ़ संस्कृति और सामूहिकता का प्रतीक ही नहीं माना गया, अपितु बच्चों के सामाजिक, संवेगात्मक, और भाषिक विकास के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण भी माना गया है। सुर, लय व ताल के साथ गाई जाने वाली इन तुकबन्दियों में बच्चों ने कभी अर्थ ढूँढ़ने की कोशिश की हो ऐसा किसी भी समाज के इतिहास में नहीं हुआ होगा, फिर भी बिना प्रयास के कण्ठस्थ कर लेना और पूरे जोश व आनन्द के साथ गाना, यह हर जगह देखने को मिल जाएगा।

अपनी तमाम महत्त्वपूर्ण उपयोगिताओं के साथ-साथ ये खेल गीत किस तरह से पढ़ना सिखाने का ज़रिया बन सकते हैं, ऐसा अनुभव मैं आपके साथ साझा करना चाहती हूँ।

सम्भवतया आपके मन में सवाल उठे कि आज के समय में तो एक से बढ़कर एक रंगीन चित्रों वाली पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध हैं, आकर्षक चार्ट पेपर 'वर्णमाला व बारहखड़ी के' हैं, और भी तरह-तरह की बच्चों के स्तर की पठनीय सामग्री है तो फिर खेल गीत ही क्यों चुना गया पढ़ना सिखाने के लिए?

तो इस प्रश्न का पहला जवाब तो यह है कि 'पढ़ना' सिखाने के लिए यह ज़रूरी नहीं कि हमारे और हर बच्चे के पास पाठ्यपुस्तक हो या कहानी-कविताओं की पुस्तकें हों। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बच्चे जो भी बोलते हैं, जैसा भी बोलते हैं, उसके आधार पर बच्चों को पढ़ना सिखाया जा सकता है।

अब मैं खेल गीत के माध्यम से पढ़ना सिखाने की शुरुआत का अनुभव साझा करती हूँ। यह अनुभव देश के राज्य दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम ज़िले की एक बस्ती का है जिसे कंजड़ बस्ती के नाम से जाना जाता है। जहाँ एक तरफ़ कनॉट प्लेस देखने से देश की समृद्धि और इसके आधुनिक एवं प्रगतिशील होने का भाव मिलता है, वहीं इस बस्ती को देखकर अपनी दरिद्रता, फटेहाली और पिछड़ेपन का संज्ञान होता है। इस बस्ती में रहने वाले सभी परिवार घुमन्तू समुदायों से हैं। आज की तारीख़ में भी इनका मुख्य पेशा विवाह जैसे अवसरों पर ढोल बजाना है। इसी समुदाय के बच्चों की दिनचर्या समीपस्थ बस्ती नॉगल राया के मुख्य बाज़ार में कूड़ा-करकट बीनने से आरम्भ हो जाती है। सुबह 6 बजे से लगभग ग्यारह बजे तक कूड़ा बीनना, समीप के सामुदायिक केन्द्र के पास उसका ढेर लगाना, फिर घर या भण्डारे, जहाँ से भी भोजन का प्रबन्ध हो, भोजन करके सोना, खेलना-कूदना, टेलीविज़न देखना, यही कुल मिलाकर इन बच्चों की दिनचर्या थी।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के लागू होने के पूरे छह वर्ष बाद यह संज्ञान में आया कि इस बस्ती के लोगों व बच्चों के लिए स्कूल नाम की संस्था कोई भी मायने नहीं रखती है।

दाख़िला अभियान, दाख़िला उत्सव जागरूकता शिविर जैसे सशक्त अभियानों व कार्यक्रमों ने भी इन लोगों के आगे हार मान ली। इन सभी का यह मानना था कि 'सकूल जाके भी जिनगी जूं तो रैवे फिर टाबरा मोटी-मोटी कमाई कर लावे कचरा बीड-बाड के तो तुम सब के पेट मरोड क्यों उठें, मेनत मजूरी

करके जिनगी की रेल चलावे। सकूल में कुछ न धरा।'

इस बस्ती के बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने की ज़िम्मेदारी मुझे दी गई।

यह काम किस प्रकार से मेरे पास आया, मैंने किस तरह से बस्ती में अपनी जगह बनाई, किस तरह से उनके मानस में यह बात बैठाने में कामयाब हुई कि चलिए स्कूल न जाएँ तो न सही, यहीं बस्ती में तो पढ़ाई शुरू हो सकती है, यह सब लम्बी कहानी है। मैं सीधे उस दिन पर आती हूँ जब उन बच्चों द्वारा गाए जाने वाले खेल गीत से पढ़ना सीखना सम्भव हो पाया।

यदि आपके ज़ेहन में यह सवाल उपज रहा हो कि पाठ्यपुस्तकें नहीं थीं क्या? तो शुरू में ही बताना ठीक है कि कॉपी, पेंसिल, स्लेटें, कैलेण्डरनुमा श्यामपट्ट, चॉक, चार्ट पेपर और *रिमझिम* सभी कुछ था। मेरे सामने लगभग 4 वर्ष से 8 वर्ष तक की आयु के लड़के थे। बस्ती में लड़कियाँ भी थीं, पर समुदाय की तरफ़ से अभी उन्हें अपनी कक्षा में शामिल करने की अनुमति नहीं मिली थी।

उन बच्चों को कुछ अपने-से सीखे बालगीत सुनाए और कुछ उनके गीत सुने। उनका एक गीत था :

आमलेट, सड़क पे लेट, आई मोटर फट गया पेट
मोटर का नम्बर एटीएट, मोटर का मालिक चंदू सेठ
चंदू सेठ ने मारी लात, वहाँ पे बन गई कुतुब मीनार
कुतुब मीनार से आई आवाज़, चाचा नेहरू ज़िन्दाबाद
वीट वीट जय हिन्द, मधुबाला गरम मसाला
सब्ज़ी में डाला पड़ गया काला, सीता गोरी रावण काला
उसको ले गया मूँछों वाला, सबकी हिम्मत पर पड़ गया ताला

यह गीत सभी ने बहुत ही तन्मयता के साथ गाया। उन्होंने बताया कि शाम को जब वे रेल पटरी पर 'चिक्कन पो' खेलते हैं, तो यही गीत गाते हैं।

इस कोरस का सभी ने जमकर मज़ा लिया और समाप्ति पर ज़बरदस्त ठहाके लगे।

ठहाकों की आवाज़ जैसे ही थोड़ी मद्धिम हुई, मैंने आधे-अधूरे आत्मविश्वास के साथ



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कहा– "साथियों, कितना सुन्दर गीत है न ये, क्या तुम इसे लिखवा सकते हो?"

मेरे इस प्रश्न पर जो सन्नाटा छाया, उसे बयाँ करने के लिए मैं इतनाभर कह सकती हूँ कि पुराने जमाने की कहानियों में वर्णित, 'जंगल की नीरवता' का सा माहौल उत्पन्न हो गया था वहाँ। मैं भी अचकचा गई थी कि भला मैंने ऐसा क्या कह दिया, यह तो भला हो प्रहलाद का जिसने सन्नाटे से उबारा। उसने बहुत ही सशंकित होकर पूछा– "दीदी! जे बाले गाने को लिखने की बात है क्या?"

"हाँ हाँ, यही आमलेट वाला जो अभी तुम सबने गाया।"

मेरी इस बात पर मेरा मज़ाक़ बनाने वाली समवेत हँसी जो शुरू हुई तो वह मेरे डपटने पर ही शान्त हुई।

उन बच्चों का यह मानना था कि हम जैसे खच्चड़ लोगों की बातें भी लिखी जा सकती हैं, यह सम्भव नहीं। बड़े लोगों की, ऋषि-मुनि लोगों की बातें ही लिखी जा सकती हैं। मेरे लिए इस बात की कल्पना भी करना मुश्किल था कि इक्कीसवीं सदी के भारत के बहुत-से बच्चे इस बात से अनजान हैं कि जो कुछ भी बोला जाता है, वह लिखा जा सकता है। आमजन की कही गई बातें और ख़ास के मुँह से निकली बातें, सभी लिखी / छापी जा सकती हैं।

'हाथ कंगन को आरसी क्या'। अपने इन विद्यार्थियों के संशय को दूर करने के लिए पास ही रखे चार्ट पेपर से मार्कर उठा मैंने लिखने का उपक्रम किया। मुझे बस पहला ही शब्द याद था 'आमलेट'। मैंने भारी भरकम आवाज़ में उन्हीं के अन्दाज़ में गाया 'आमलेट' और आवाज़ के साथ-साथ लिखती गई, 'आ म लेट'।

मेरा बोलना और साथ-साथ उसी शब्द को लिखना इन सब बच्चों के लिए बहुत बड़ा अजूबा था। मैं फ़र्श पर बैठी झुककर लिख रही थी और चारों तरफ़ से बच्चे मुझे घेरकर मेरे लिखने को देख रहे थे। वे अभी भी शंका में थे कि मैंने 'आमलेट' ही लिखा है या कुछ और। चूँकि मुझे आगे की पंक्तियाँ याद थीं नहीं, इसलिए चार्ट पेपर पर झुके-झुके ही बोली– "हाँ भई, आगे नहीं लिखवाओगे क्या? बोलोगे तभी न लिख पाऊँगी मैं।" अब तक मैं जान चुकी थी कि इस समूह में किन-किन की चलती है यानी कि कौन लीडर है, सो उन्हीं तीन-चार लीडरनुमा बच्चों को देखते हुए मैंने संकेत दिया कि आप आगे गाएँगे तो उसी के सहारे ये लेखनी आगे बढ़ेगी।

वे तीनों-चारों एक दूसरे को कनखियों से देखने लगे। उनमें से एक ने कहा, "आप हमें .... (असंसदीय शब्द) तो नहीं बना रहीं?" उनका आशय यह था कि मैं उन्हें बेवकूफ़ तो नहीं बना रही हूँ।

मैंने उन्हें यक़ीन दिलाया कि इस दुनिया के हर व्यक्ति द्वारा कही गई बात लिखी जा सकती है।

अब पुनः उसी बच्चे ने सशंकित भाव से पूछा– "मतबल कि हम सब जो कुछ कहते-सुनते हैं वो सब-का-सब लिख सकते हैं और लिख सकते हैं तो पढ़ा भी जाएगा न।"

"दुरुस्त, एकदम दुरुस्त। सभी कुछ लिखा-पढ़ा जा सकता है। और जिन गालियों का तुम लोग इस्तेमाल करते हो न, वह भी लिखा जा सकता है पर मैं लिखूँगी नहीं।"

थोड़ी देर के सन्नाटे के बाद, उसी बच्चे पुत्तन ने प्रौढ़ता भरे अन्दाज़ में कहा, "चलो, अगर तुम कहती हो तो मान लेते हैं, चलो लिखो," और पुत्तन के साथ-साथ बाक़ी ने भी बोलना शुरू किया– "आमलेट, सड़क पे लेट ..."

उनके बोलने की गति के मुताबिक़ मेरे लिखने की गति धीमी थी, फिर वे इतना चीख-

चीख कर गा रहे थे कि मैं शब्द पकड़ ही नहीं पा रही थी।

मैंने लिखना रोककर, थोड़ा खीझ के साथ कहा– “अपनी स्पीड तो कम करो भई। इतना जल्दी हाथ चलता है क्या?”

मेरा इतनाभर कहना था कि अपनी जाँघों पर हाथ मारते हुए पुत्तन ने कहा– “हो गई सिट्टी-पिट्टी गुम। मे के रिया था कि आप फ़ालतू का ड्रामा कर रही हो।”

इससे पहले कि पुत्तन के संकेत पर बच्चों की जमात उठे, मैंने उन्हें हल्के से गुस्से के अन्दाज़ में फिर से समझाया और अपना गीत धीमी गति से गाने के लिए लगभग अनुनय विनय की।

अब फिर से लिखना शुरू हुआ। छठी पंक्ति के समाप्त होते ही पुत्तन व गोकुल ने सबको रोका और तीसरी पंक्ति पर हाथ रखकर कहा– “जे बोल के दिखाओ। का है जो?”

मैंने पढ़कर सुनाया– “आई मोटर फट गया पेट।”

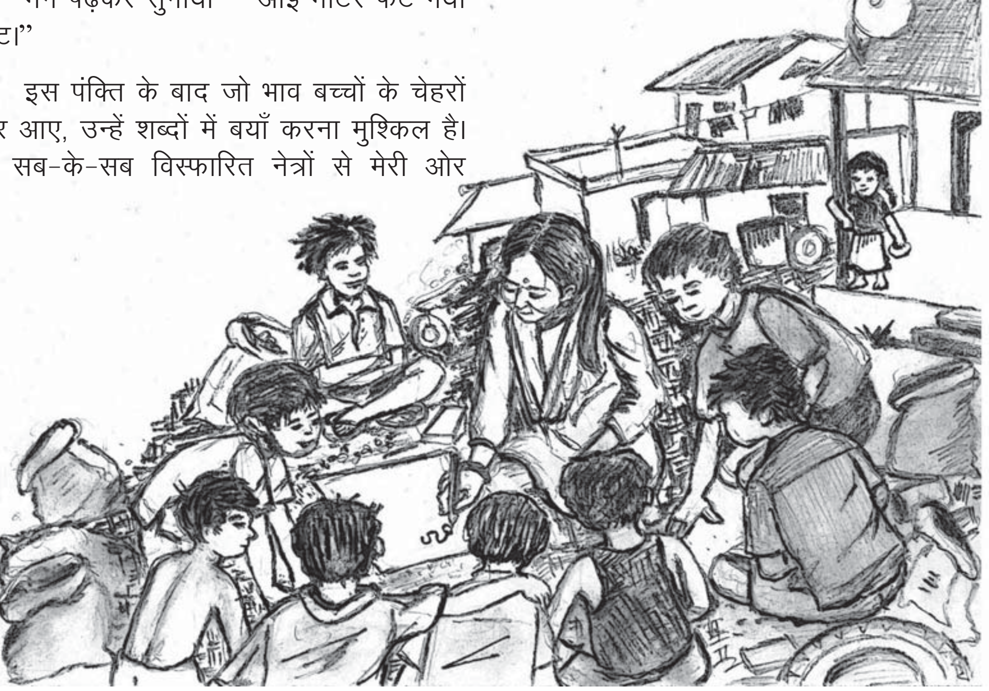
इस पंक्ति के बाद जो भाव बच्चों के चेहरों पर आए, उन्हें शब्दों में बयाँ करना मुश्किल है। वे सब-के-सब विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर और चार्ट पेपर पर लिखी पंक्तियों की ओर देख रहे थे।

आश्चर्य और आशंकाओं के माहौल में गीत किसी तरह से पूरा हुआ और अब इस गीत के ज़रिए पढ़ना सिखाने की बारी आई। मैंने दूसरा चार्ट पेपर उठाया और बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आपके इस गीत का पहला शब्द मैं इसपर लिख रही हूँ। आप ध्यान से देखें।

मैंने आमलेट शब्द को ‘साइट शब्द’ बनाया और जैसे-जैसे बोलती, वैसे-वैसे उन्हीं वर्णों पर अंगुली रखती।

फिर सबसे बुलवाया– आ म ले ट।

मैंने ये ध्यान रखा कि उनकी आवाज़ और मेरा संकेत मेल खाएँ। बच्चों का ध्यान आवाज़ और वर्ण के चित्र पर दिलाया। मैं बोली जाने वाली आवाज़ और उसके चित्र (वर्ण की बनावट) पर ध्यान दिला रही थी।



चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

इसके बाद मैंने 'दूसरे चार्ट पर' पर 'आ' वाले शब्द लिखे, जैसे—

आधा	आटा	आपका	आम
आठ	आफ़त	आदत	आरती
आराम	आगे	आना	आढ़तिया

बच्चों से पूछा कि 'आमलेट' की कौन-सी तस्वीर इन शब्दों में नज़र आ रही है। मेरा उद्देश्य 'आ' सिखाना था। बच्चों ने थोड़े से समय में ही हर शब्द के 'आ' पर गोला लगाया और हर्ष का विषय था कि आम शब्द पर तो पूरा-पूरा गोला लगाया और यह शब्द बोलते-पढ़ते समय असीम सुख और अचरज की अनुभूति उनके चेहरे पर देखी जा सकती थी।

मैं आज की कक्षा समाप्त करना चाह रही थी, पर बच्चों के आग्रह पर दूसरा शब्द लिया गया :

पहले वाली प्रक्रिया दोहराई गई। इस बार 'परमजीत' के 'म' पर ध्यान देर से गया परन्तु बाक़ी शब्दों के 'म', यहाँ तक कि 'मौसम' के 'मौ' पर भी ध्यान गया। और उसके लिए चनुआ का सवाल था कि "यहाँ पर मा ने छतरी क्यों तान रखी है?"

इस तरह से 'आमलेट' में आने वाले सभी वर्णों के साथ काम किया गया। यद्यपि मैं उन बच्चों को 'आ म ले ट' लिखवाना भी चाह रही थी, पर सभी का ध्यान आकृतियों की पहचान करने में अधिक था।

सभी बच्चे खेल, थकान, ऊधम, खाना सब भूल चुके थे और अगली पंक्ति पर जाना चाह रहे थे, परन्तु मेरे लिए रुकना सम्भव न था। मुझे कहते हुए स्वयं से ग्लानि महसूस हो रही है।

अगले दिन का दृश्य परी कथाओं के सुखद अंजाम जैसा था। पिछले दिन के चार्ट पेपर को देख-देख कर बोलने-पढ़ने का काम चल रहा था।

आज मैंने कल की युक्ति के स्थान पर पूरी-की-पूरी पंक्ति को आधार बनाया :

आमलेट, सड़क पे लेट
आ गई मोटर फट गया पेट

मैं हर शब्द पर अँगुली रखते हुए बोलती जा रही थी और चार बार ऐसा करने के बाद बच्चों से भी बुलवाया। इसके बाद आम, सड़क, लेट, फट, पेट इन शब्दों की पहचान अलग से करवाई।

इस काम में लगभग तीन घण्टे लग गए थे। मुझे लगा, आज अब बस करना चाहिए या कुछ कहानी-कविता कहनी चाहिए पर बच्चों को अभी उकताहट या थकावट हुई हो, ऐसा जान नहीं पड़ा। मैं आगे की युक्ति सोचकर नहीं आई थी। मैंने तुरन्त कविता की पहली दो पंक्तियों को आधार बनाते हुए मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा :

एक सड़क थी।
सड़क पे मोटर आई।
न जाने कैसे मोटर का टायर फट गया।
चनुआ मोटर चला रहा था।
चनुआ मोटर से उतरा। पेट के बल लेटकर टायर चेक किया।

मैंने यह सामग्री बच्चों के आगे की और पूछा कि क्या इसे पढ़ना चाहोगे?

एक आवाज़ आई— "हमारे गाने का क्या हुआ?"

दूसरी आवाज़— "इतना मज़ा आ रहा था। काहे का भौकाल मचा रखा है?"

तीसरी आवाज़— "अरे! इसमें आमलेट तो है ही नहीं, वह कहाँ गया?"

चौथी आवाज़, लगभग चार्ट पेपर पर गिरते

हुए– “देख-देख ये ‘सड़क’ लिखा है बे .... (गाली) ये कहाँ से आ गई।”

जिस तरह से उनके गीत को पढ़कर ‘प्रत्येक शब्द पर अँगुली रखते हुए’ सुनाया गया था, ठीक उसी तरह यह टुकड़ा भी सुनाया गया। मुझे अपने-आप में गुदगुदी-सी हो रही थी कि बच्चे अधिकांश शब्दों को स्वयं पहचान पा रहे थे।

इस छोटे-से अनुच्छेद में ‘चनुआ’ नाम आते ही लगभग सभी बच्चे उछल-से पढ़े और आवाज़ें आने लगीं–

- ओय होय चनुआ उस्ताद। भूतनी के, मोटर चलाएगा?

- ये मोटर चलाएगा तो टायर फुस्स ही होएगा।

- आपने ‘चनुआ’ से क्यों चलवाई मोटर।

- हमारा नाम भी लिखो, हमारा नाम भी लिखो।

तो साथियों, उस अनुच्छेद से चनुआ का नाम हटाना ही पड़ा। किसी भी तरह के द्वन्द्व से बचने के लिए मैंने वहाँ अपना नाम लिख दिया। और एक अलग चार्ट पेपर पर सबके नाम मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे गए।

अब सबका कहना था कि पहले अपने नाम लिखना सीखेंगे, उसके बाद आमलेट वाला गीत सीखेंगे।

साथियों, इस तरह से बच्चों के इस अजब से गीत के ज़रिए पूरी टोली ने पढ़ने की दुनिया में प्रवेश किया। कहीं हमारी टोली बिदक न जाए, इस डर से पाठ्यपुस्तक से भी पढ़ाना शुरू कर दिया पर जो आनन्द रस शुरुआती दिनों में आ रहा था वह अवर्णनीय है।

शारदा कुमारी ने शिक्षा मण्डल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर के पुरम्, नई दिल्ली में बतौर प्राचार्य काम किया। राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद्, नई दिल्ली की पाठ्यपुस्तकों एवं प्रशिक्षण निर्देशिकाओं के विकास एवं लेखन में सक्रिय योगदान। दिल्ली राज्य के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल पाठ्यक्रम का विकास। भिन्न-भिन्न स्तरों पर अध्यापक क्षमतासंवर्धन कार्यक्रमों का आयोजन एवं समन्वयन। ‘अध्यापकों का भाषाई व्यवहार एवं जेण्डर सम्बन्धी रूढ़ छवियाँ’ पर शोध कार्य।

सम्पर्क : ajai_cs@yahoo.com

